# 24 बात केवल बैडमिण्टन की ही नहीं है!

अदिति मुटाटकर

बैडमिण्टन मेरा खेल ही नहीं, मेरा होना भी है। मैं जो भी हूँ, इसी से हूँ!

नौ बरस की थी जब मैंने मुम्बई में खेलना शुरू किया। मेरे पिताजी हमारी कॉलोनी के एक सक्रिय खिलाड़ी थे और अपने दोस्तों के साथ आउटडोर बैडमिण्टन खेला करते थे। उन्होंने ही इस खेल से मेरा परिचय करवाया। और जब मैंने उन्हें और उनके दोस्तों को हराना शुरू किया, उन्होंने मुझे मेरे सबसे पहले स्कूल टूर्नामैण्ट में भाग लेने की अनुमति दी – इसमें मैंने तीसरा स्थान प्राप्त किया। अगली गर्मी की छुट्टियों में मैंने सन्तोष क्षत्रिय के ग्रीष्मकालीन कोचिंग कैम्प में भाग लिया, और ठीक दो महीने बाद मैंने अपना पहला 'अण्डर–10' स्टेट टूर्नामैण्ट जीता। बस फिर क्या था, बैडमिण्टन से मेरा जो रोमांस शुरू हुआ वह आज भी प्रगाढ़ बना हुआ है।

मेरा विश्वास है कि खेल ऊँच–नीच का नाश करने वाला होता है, बराबरी लाता है। उस दिन की आपकी फॉर्म ही तय करती है कि उस दिन आप कितने अच्छे खिलाड़ी हैं। खेल जीवन बहुत कठिन है। पहले के मुकाबले आप ज्यादा कड़ी मेहनत करते हैं, फिर भी इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि आप अपना मनचाहा परिणाम पाएँगे। अपनी कड़ी मेहनत के बावजूद आप हार सकते हैं। आपको बस इतना ही करना है कि अगले दिन आप उठें और, कड़ी मेहनत करने में फिर से जुट जाएँ – उस हद तक जिस तक आप जा सकते हैं।

और यही बात आपके जीतने पर भी लागू होती है। आप चैम्पियन हैं तो भी आपको अपना स्थान बनाए रखने के लिए अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मुकाबले दोगुनी मेहनत करनी होगी। हर कोई आपको हराने के लिए बेताब होगा और आपको अपने चैम्पियन होने के लेबल की रक्षा के लिए अपने को और मजबूत करना होगा। मेरे खेल ने मुझे एक बहुत मजबूत व्यक्ति बनाया है। बैडमिण्टन कोर्ट पर बीते मेरे 14 सालों में मैंने अपने लक्ष्य को पाने के लिए स्वयं को बस मारा नहीं है – इस एक बात को छोड़ बाकी सब कर डाला है। अभी मैंने थोड़ा कुछ हासिल किया है, और बाकी सब पाने में लगी हूँ।

एक बैडमिण्टन खिलाड़ी अनुशासित जीवन जीता है। मेरा जीवन अक्षरश एक समय–सारिणी बन गया है। सुबह मैं साढ़े छह बजे उठती हूँ। ध्यान (मेडिटेशन) लगाती हूँ। दूध और फल खाती हूँ। फिर तीन घण्टे की ट्रेनिंग के लिए बैडमिण्टन–कोर्ट चली जाती हूँ। घर लौटती हूँ। अपनी डायरी लिखती हूँ। दोपहर का भोजन करती हूँ और एक घण्टे की झपकी लेती हूँ। अपने अगले सत्र के लिए तैयार होती हूँ, दो घण्टे के लिए फिर से प्रशिक्षण होता है, घर वापस आती हूँ और रात का भोजन लेती हूँ। अपनी डायरी लिखती हूँ और दूध गटककर साढ़े दस बजे तक सो जाती हूँ। दिन–प्रतिदिन, सप्ताह के छह दिन, मेरा यही नियम रहता है। रविवार को या तो कोई फिल्म देखती हूँ या अपने दोस्तों से मिलती हूँ। इस जीवनशैली को मैंने कभी भी त्याग के रूप में नहीं माना। मेरे लिए तो बस यही जीवन है, और मुझे इससे कोई शिकवा नहीं है। बैडमिण्टन का कोर्ट ही वह जगह है जहाँ मुझे पूरा सुकून मिलता है।

मेरे लिए खेल का अर्थ केवल जीत या हार ही नहीं है, बल्कि जीने का एक सलीका है। मेरे हिस्से में दोनों आए – जीत भी, हार भी। खेल में अपने बरसों के अनुभव से मैंने दोनों से निभाना सीखा। हाँ, एक चीज जिससे निपटना मुझे मुश्किल लगता है, वह है चोटें। भारत एक खेलोन्मुखी देश नहीं है (हालाँकि अब हम धीरे–धीरे उसी ओर बढ़ रहे हैं)। आज भी हमारे पास चोटों से निपटने वाले पेशेवर केन्द्र नहीं हैं। खेल–सम्बन्धी चोटें, सामान्य चोटों से एकदम अलग होती हैं, सो उनसे निपटना भी अलग ढंग से ही पड़ता है। जाँच–निदान और शल्य–चिकित्सा तो वही हो सकते हैं लेकिन बहाली और उपचार एकदम अलग ही होते हैं। खेल–बहाली सेवाओं के प्रति जागरूकता का अभी भी अभाव है। खेल–सम्बन्धी चोटों का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले पर्सनल ट्रेनर मिलना बहुत कठिन है। हमारे पास जो भी मुट्ठी भर ऐसे विशेषज्ञ हैं, उन्हें खोज पाना या तो बहुत मुश्किल है या फिर वे बहुत ही महँगे हैं – खासकर मेरे जैसी किसी मध्यमवर्गीय लड़की के लिए।

इसलिए छह बरस पहले जब मुझे पहली बड़ी चोट लगी, जिसमें मेरा दाहिना घुटना टूटा (ठेठ तकनीकी हिसाब

से कहूँ तो मेरे घुटने की सामने वाली स्नायुपट्टिका यानी लिगामेन्ट चिर गई थी और मेरे घुटने की उपास्थि – कार्टिलेज – भी पूरी तरह से फट गई थी), तो यह मेरे लिए बहुत बड़ा धक्का था। मैं तब सत्रह बरस की थी। मेरा खयाल है कि इस घटना से मेरे मुकाबले मेरे माता–पिता कहीं अधिक पीड़ित हुए थे। उस समय मुझे नहीं मालूम था कि मैं फिर से कभी खेल पाऊँगी या नहीं। लेकिन इस बात को लेकर तो मैं दृढ़प्रतिज्ञ थी कि सबसे अच्छी बैडमिण्टन खिलाड़ी बनने के मेरे सपने की राह में चोटों को रुकावट नहीं बनने दूँगी। बस मैंने कमर कस ली और अपने लिए एक अच्छे डॉक्टर (रमैया हॉस्पिटल, बंगलौर के डॉ. सुन्द्रेश) को ढूँढ़ निकाला। उनसे पहली मुलाकात मुझे अभी भी याद है। उन्होंने मेरे घुटने को देखा, जाँचा–परखा और अपनी कुर्सी पर बैठ गए। चूँकि मेरे माता–पिता पुणे में थे सो मैं अपने एक मित्र की माँ के साथ डॉक्टर सुन्द्रेश से मिलने गई थी। पहली बात उन्होंने मुझसे यह कही कि मेरी चोट बहुत गम्भीर थी और उसका ऑपरेशन करना ही पड़ेगा। मैंने उनसे पूछा कि मैं फिर से कब खेल पाऊँगी, और उनका उत्तर था कि मुझे कोर्ट वापस लौटने में ही कम से कम एक साल तो लग जाएगा। मुझे इतने लम्बे इन्तजार का अन्दाजा नहीं था, इसलिए थोड़ी देर तो मैं चुप रही। डॉक्टर ने कहा, ''तुम यदि वाकई ठीक होना चाहती हो तो इसके लिए एक साल तो कुछ भी नहीं है।'' मैं उन्हें तकती रही, और मन ही मन सोचने लगी कि मुझे उन पर यकीन तो करना ही पड़ेगा।

अगले दिन मेरा ऑपरेशन हुआ। हफ्ते–भर बाद मेरी बहाली शुरू हुई। जब तक मैं बिना बैसाखी के फिर से चलने के काबिल नहीं बन पाई, डॉक्टरों ने मेरी बड़ी मदद की। अब शुरू हुई मेरी असली परीक्षा। मैं वापस पुणे लौटी लेकिन मुझे अपने पुनर्वास, अपनी बहाली के बारे में जरा भी ज्ञान नहीं था। सो मैंने डॉक्टरों और इन्टरनेट से जानकारी जुटाना शुरू कर दिया। मैंने उन वरिष्ठ खिलाड़ियों से भी बात की, जो खुद इन्हीं तरह की समस्याओं से उबरे थे। मैंने अपना पर्सनल ट्रेनर खोजने की कोशिश की लेकिन कोई न मिला, और जो मिले भी वे बड़े महँगे थे। मैं अपने माँ–बाप पर इस खर्च का बोझ नहीं डालना चाहती थी; और न ही मेरे कोई प्रायोजक थे। सो यह तो स्पष्ट था कि मुझे खुद ही कोई न कोई जुगाड़ करना होगा।

किसी भी बाहर के व्यक्ति को मेरे जीवन का वह अरसा दुर्भाग्यपूर्ण लग सकता है, लेकिन असल में तो वह मेरे लिए किसी छिपे हुए वरदान से कम नहीं था। इसने मुझे स्वाधीन बनाया; मेरी सीमाओं को आगे धकेला और मुझे दिखाया कि मैं क्या कुछ कर सकती हूँ। इसी के चलते मुझे यह अहसास हुआ कि यह खेल मेरे लिए कितना महत्व रखता है, और इस अनुभव ने मुझे विनम्र बनाया,

समझाया कि जिन्दगी के हर पल को भरपूर जीने का कितना महत्व है। मेरे लिए सबसे अच्छी बात तो यह थी कि मेरे आसपास सब अच्छे ही अच्छे लोग थे। मेरे किसी भी कोच ने न तो हार मानी और न ही सहानुभूति जतलाई। न उन्होंने कोई सांत्वना दी, और न ही मेरे भविष्य को लेकर कोई आशंका व्यक्त की। उन्होंने मुझसे कहा कि आत्मदया और सहानुभूति मेरे किसी काम नहीं आने वालीं। मेरे एक कोच ने कहा, ''तुम्हें सिर्फ एक ही चीज पर ध्यान देना है, वह है समाधान। अपने समाधान खोजो और समस्याओं पर इस विश्वास के सहारे काम करना शुरू कर दो कि ईमानदारी से किया गया हर प्रयास हमेशा तुम्हें अपने लक्ष्य के पास ही ले जाएगा।''

मैं अपनी राह पर चलती रही और अन्त में सफल भी हुई। सभी आयु–समूहों में राष्ट्रीय चैम्पियन बनने और 2008 में विश्व में 27वें नम्बर (आज मैं 102वें क्रम की खिलाड़ी हूँ) की खिलाड़ी बनने के तमाम लक्ष्य मैंने प्राप्त किए और कभी भी अपनी चोट का बहाना नहीं बनाया। मेरे खेल ने मुझे यही सिखाया है कि आप अगर किसी

बात में विश्वास करते हैं तो आप तुरन्त जुट जाइए और उस चीज को पा लीजिए। आप दिल से चाहें तो कुछ भी नामुमकिन नहीं।

एक खिलाड़ी को खूब यात्रा करनी पड़ती है। 23 साल की उम्र तक आते–आते मैं कोई चालीस देश देख चुकी हूँ। अक्सर मैं टीम या अपने माता–पिता के बिना, अकेले ही यात्रा करती हूँ। बहुतेरे देश देखने, उनकी संस्कृतियों, उनके भोजन, उनकी भाषाओं को जानने–समझने का मुझे मौका मिला है, और इसके लिए मैं खुद को बहुत भाग्यशाली मानती हूँ। मुझे यात्रा करना बहुत अच्छा लगता है और मेरा खेल इसमें मेरी मदद करता है। आज मैं अपनी हमउम्र लड़कियों के मुकाबले खुद को कहीं ज्यादा आत्मविश्वासी और सक्षम पाती हूँ, और इसका सारा श्रेय मेरे खेल को जाता है। मैं जानती हूँ कि मैं किसी भी परिस्थिति में रह सकती हूँ, अपना अस्तित्व बनाए रख सकती हूँ, किसी अजनबी देश में, अजनबियों के बीच भी।

मेरी समूची यात्रा के दौरान मेरे खेल ने जो सबसे बड़ा उपहार मुझे दिया है, वह हैं वे लोग जिनसे मैं मिली। मैं प्रकाश पदुकोण, विमल कुमार, हेमन्त हार्डिकर और तमाम अन्य खिलाड़ियों के मार्गदर्शन में काम कर चुकी हूँ। मैंने उन्हें अपना जीवन बेहद विनम्रता और ईमानदारी के साथ जीते हुए देखा है। उन्होंने कभी भी अपनी उपलब्धियों को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। उन्होंने मुझे सिखाया है कि मैं यह खेल पैसे और नाम कमाने के लिए नहीं बल्कि इसलिए खेलूँ कि मैं इस खेल से प्यार करती हूँ। उन्होंने अपना जीवन इस खेल को समर्पित किया है, और इस खेल के प्रति उनका समर्पण आज भी कायम है। इन लोगों के चलते ही मेरे मानदण्ड हमेशा ऊँचे रहे आए हैं, सिर्फ बैडमिण्टन कोर्ट पर ही नहीं, उसके बाहर भी। उनके प्रभाव ने मुझे विनयशील बनाया है।

बैडमिण्टन के प्रति कृतज्ञ होने के मेरे पास अनन्त कारण हैं। मेरे ख्याल से भारत के हर बच्चे को कोई एक खेल खेलने का मौका तो मिलना ही चाहिए। खेलों का महत्व पढ़ाई से कम नहीं होना चाहिए। खेल आपका चरित्र बनाते हैं, ये आपको अपनी जय और पराजय को गरिमापूर्वक स्वीकारने का संस्कार देते हैं। ये आपको आजाद–ख्याल बनाते हैं, अपनी क्षमताओं पर भरोसा करना सिखाते हैं।

आज भारत में डॉक्टर और इंजीनियर हजारों की तादाद में हैं, लेकिन खिलाड़ी इतनी संख्या में नहीं दिखते। आज भी हम आसान रास्ता चुनते हैं और भीड़ के पीछे–पीछे चलते हैं। आशा करती हूँ कि स्पोर्टस् को करिअर बनाने के मैंने कुछ अच्छे कारण दिए हैं। पढ़ाई में अच्छा परिणाम लाने पर यदि आपको अच्छी तनख्वाह मिलती है, तो खिलाड़ी बनने पर आपको तनख्वाह भी मिलती है, साथ ही अपने तमाम दुखों और कमियों के साथ जीवन का सामना करने की ताकत भी मिलती है। आइए इस रास्ते पर चलने और अपने देश के लिए यश कमाने में अपने बच्चों की मदद करें।

***अदिति मुटाटकर*** *ने सभी आयु–समूहों – अण्डर–13, अण्डर–16, अण्डर–19 – की राष्ट्रीय चैम्पियनशिप जीती हैं, साथ ही वे भारत की राष्ट्रीय चैम्पियन भी रह चुकी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सर्किट में वे बिटबर्गर ग्रां–प्री 2008 का फाइनल भी खेली हैं। बल्गारियन ग्रां–प्री और डच ग्रां–प्री 2008 का सेमीफाइनल भी वे खेल चुकी हैं। 2010 में हुए नई दिल्ली के कॉमनवेल्थ खेलों में उन्होंने कॉमनवेल्थ रजत पदक जीता है।*